हिंदी उपन्यास में कृषक जीवन (फाँस के संदर्भ में)

डॉ. विजय गणेशराव वाघ
हिंदी विभाग,सहयोगी प्राध्यापक,
तोष्णीवाल कला, वाणिज्य और
विज्ञान महाविद्यालय, सेनगाँव
ता. सेनगाँव. जि. हिंगोली. (महाराष्ट्र)
मोबाईल – 9404534455
Email ID – dr.vijay.g.wagh@gmail.com

शोध सारांश

भारत में कृषि की सर्वोच्चता के संबंध में सुप्रसिद्ध प्राचीन लोकोक्ति स्वयं यह सिद्ध करती है कि भारत में कभी कृषि को सर्वोत्तम व्यवसाय माना जाता था । इस मत की पृष्टि हेतु भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह का मत देखना समीचीन होगा, वे लिखते है– "कृषि हमारे देश में केवल जीवनोपार्जन का साधन मात्र अथवा उद्योग–धंधा ही नहीं है अपितु अर्थव्यवस्था की रीढ़ है । राष्ट्र की संसृद्धि, योजनाओं की सफलता, विदेशी मुद्रा का अर्जन, राजनैतिक स्थिरता आदि सभी कृषि विकास पर आधारित है ।"[1] किंतु आजादी के 73 वर्षों के बाद देश की कृषि संबंधी वास्तविकता कुछ और दिखाई देती है । कृषि बाजारों में गाँव के व्यापारियों–साहुकारों तथा आढ़तियों, कमीशन एजेंटों आदि जैसे अन्य बिचौलियों का निरंतर शोषणात्मक रवैया आज किसानों की आर्थिक स्थिति को बद से बदत्तर कर रहा है । वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक आपदाएं सूखा, बारिश, बाढ़ और चक्रवात जैसी परिस्थितियाँ भी उन्हें घेरे रहती है । सन् 1990 के दशक में प्रारंभ किए गए आर्थिक सुधारों ने आर्थिक राष्ट्रीय नीति में कृषि अर्थव्यवस्था को हाशिए पर खड़ा कर दिया गया । परिणामस्वरूप देश की कृषि व्यवस्था सकारात्मक अर्थव्यवस्था से नकारात्मक अर्थव्यवस्था में रूपांतरित हो गई । जिसके चलते कृषक समाज अनेक समस्याओं से ग्रस्त हो गया । नियोजित आर्थिक विकास का लंबा सफर तय करने के बादजूद भी कृषि और किसानों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है । किसानों की दिन प्रतिदिन गिरती आर्थिक स्थिति देश और समाज के लिए गंभीर चिंता का विषय है ।

भारत में ग्रामीण जीवन से संबंधित समस्याओं में कृषक तनाव एक ऐसी समस्या है जो कम या अधिक मात्रा में देश के लगभग सभी क्षेत्रों में व्याप्त है । वर्तमान में कृषक तनाव का मुख्य परिणाम कृषकों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं के रूप में सामने आयी है । श्रीयुत जी. पी. मिश्रा अपने अध्ययन के आधार पर किसान तनाव को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "कृषि संबंधी संरचना में होने वाली परिवर्तन की प्रक्रिया से जब कमजोर वर्ग के किसानों की आर्थिक दशा में सुधार नहीं हो पाता तो इससे उत्पन्न होने वाले असंतोष को ही कृषक तनाव कहा जाता है ।"[2] कृषक की ऋणग्रस्तता से उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव एवं आर्थिक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए हरिश्चंद्र पाण्डेय का यह मत विचारणीय है। वे अपनी कविता में लिखते हैं–

"क्या नर्क से भी बदतर हो गई थी उसकी खेती,
वे क्यों करते आत्महत्या
जीवन उनके लिए उसी तरह काम्य था

जिस तरह मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष
लोकाचार उसमें नदियों की तरह प्रवाहमान सदा नीरा
उन्ही की हलों के फाल से
संस्कृति की लकीरें खिंची चली आई थी
उनका आत्म तो कपास की तरह उज्जर था
वे क्यों करते आत्महत्या ।"

किसानों की यह स्थिति किसी भी सभ्य समाज के लिए बेहद शर्मनाक करने वाली घटना है । आखिर वे कौन सी परिस्थितियाँ है, जो देश के अन्नदाता को ही अपनी जीवन लीला समाप्त करने को मजबूर कर रही है । राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी रिकॉर्ड के अनुसार देश में किसानों की आत्महत्या के मामले किसी भी अन्य व्यवसाय से अधिक है ।

विगत दो दशकों से देश के विभिन्न राज्यों में बढ़ रही किसानों की आत्महत्याओं को केंद्र में रखाकर संजीव ने खोजी लेखन के तहत 'फाँस' उपन्यास की रचना की । देश के किसान की वर्तमान स्थिति को दर्शाते हुए उपन्यास की भूमिका में प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं– "सब का पेट भरने और तन ढकने वाला किसान खुद भूखा नंगा और लाचार क्यों है? बहुत ही ज्वलंत और बेनियादी मुद्दा चुना है संजीव जैसे कथाकार ने और संभवत: प्रेमचंद के गोदान के बाद पहली बार भारतीय किसान और गाँव की पूरी जिंदगी का दर्द और कसमसाहट सामने आई है । स्थानीय होकर भी वैश्विक, तात्कालिक होकर भी कालातीत"[3] 'फाँस' यह उपन्यास महाराष्ट्र के विदर्भ अंचल में स्थित यवतमाल जिले के बनगाँव में तिल–तिल मरते हुए, किसान परिवार के शिबु और शकुन तथा उनकी दो बेटियों के माध्यम से लेखक ने देश के कृषक जीवन की दुखद गाथा की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत किया है। उपन्यास के संदर्भ में अपने विचार रखते हुए डॉ. वंदना तिवारी लिखती हैं– "उपन्यास दो भागों में बँटा दिखाई देता है । पहला किसानों के दुख–दर्द, उनके संघर्ष, असफलताओं और उनकी आत्महत्याओं की केस स्टडी की तरह सामने आता है, जो समस्याओं के कारणों की शिनाख्त करता है । जिससे यह विदर्भ से शुरू होकर पूरे देश के किसानों की समस्याओं को समेटता हुआ । उन सबकी करूण गाथा बनकर उभरता है । तो वहीं दूसरा हिस्सा वो है जो समस्याओं के समाधान की खोज में आगे बढ़ता है । इसमें वे पात्र प्रमुखता पाते है जो मृतकों के जाने के बाद समय और समस्याओं से जुझने के लिए बचे रह गए है जो जान देने से कुछ बदलने वाला नहीं । बदलना है तो जीना होगा, लडना होगा ।"[4] सूचना प्रोद्योगिकी के युग में भी देश के विभिन्न भागों में सिंचाई व्यवस्था की उन्नत तकनीकों का सरकारी नीतियों के चलते यथा योग्य प्रसार नहीं हो पाया है, आज भी किसान पारंपरिक खेती करने को मजबूर है । किसान जिन फसलों को बोना चाहते है उनके अनुकुल मानसून जलवायु, पानी, भूमि के साथ ही अच्छी प्रजाति के बीजों की व्यवस्था न होने से किसान अच्छा उत्पादन नहीं ले पाता । लेकिन वर्तमान की उपभोक्तावादी संस्कृति के पोषक वर्ग के विकृत मानसिकता वाले लोगों को लगता है कि किसान अपने भाग्य को बदलना नहीं चाहता, वह मेहनत नहीं करना । ऐसे लोगों को उपन्यासकार करारा जवाब देते हुए, शकुन के माध्यम से कहते हैं– "पत्तलों में नहीं खा रहे? या कि जमीन पर नहीं सो रहे? लेकिन कोई भी तपस्या आज तक फलवती हुई क्या? कहने को दो एकड़ की खेती? मिला क्या? कापूस तक एकदम से दगा दे गया, मक्का सिर्फ नाम का जो थोडी बहुत उम्मीद है, वह धान से । वह भी कितनी । दो साल से ही सूखा है । यह तो कहो, पास ही जंगल है जिससे सहेरा, शाल के बीज, मावा, बाँस, लकडी आदि से कुछ न कुछ मिल जाता है, वरना तो ब्राह्मणों की रहनुमाई करते बीतती । वर्षों पहले कापूस का नया बीज आया तो एक आस जगी थी । वह भी साला नपुसंक निकला अब चारों तरफ निराश किसानों का एकमात्र अवलम्ब बचा जगंल। उस पर भी वन विभाग का नया फरमान छूना मत?"[5]

निरंतर बढ़ती आबादी, औद्योगीकीकरण एवं नागरीकरण के विस्तार से कृषि योग्य भूमि में कमी आई है । सन् 1947 से लेकर वर्तमान सरकार तक सभी ने किसान हित में अनेक योजनाओं की घोषणा की । परंतु इन योजनाओं को क्रियान्वित करने से पहले किसानों की जमीनी समस्याओं को ध्यान में रखा जाता तो शायद आज देश के किसानों की स्थिति कुछ और होती । तभी तो उपन्यासकार कुर्सियों पर बैठे भ्रष्टनेता, अधिकारियों की दिशाहीन सरकारी नीतियों की आलोचना करते हुए कहते हैं– "दिली में ही बैठकर क्यों बना ली सरकारों ने हमारे गाँवों के कायाकल्प की योजना? क्यों जगाए सपने, बी. टी.बीज की तरह बांझ सपने? मर गए लोग? हम से पूछते, हम बताते, बडे नहीं, छोटे–छोटे सपने चाहिए हमारे गाँव को ।"[6] भारत के अधिकांश कृषक आज भी अशिक्षित है, वे अपनी अज्ञानता के कारण वैज्ञानिक अनुसंधानों से बेखबर तथा प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहने की वजह से भारतीय कृषक जीवन में बाहआडंबर, रूढि व प्राचीन परंपरा आज भी दिखाई देती हैं । गाँवों में विभिन्न प्रकार के देवी–देवताओं की पूँजा करना, भाग्यवाद, जादू–टोना जैसे अंधविश्वास ग्रामीण जीवन में आस्था का केंद्र बना हुआ है । इन परंपराओ के प्रति कृषक की गहन आस्था है । यही वजह है कि धर्म के नाम पर पूंजीपतियों एवं साहुकारों ने किसानों का निष्ठुर शोषण किया है । जिसकी अभिव्यक्ति फाँस उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । उपन्यास की पात्र शकुन के माध्यम से लेखक कहते हैं– "उसने किस देवी–देवता की पूजा नहीं की, मन्नत नहीं मांगी लेकिन कुछ बदला? कुछ नहीं । उसे दिन पर दिन इन देवी–देवताओं पर संशय होता जा रहा है ।"[7] यही कारण है भारतीय कृषक–समाज नवीनता और प्राचीनता के द्वंद में फसा हुआ है । गाँव में कही धार्मिक आस्थाओं का विघटन हुआ है तो कही नवीन प्रवृत्तियों ने जन्म भी लिया है । तभी तो चौधरी छोटूराम किसानों को सावधान करते हुए कहता हैं– "ऐ किसान! चौकस हो के रह । चौंकन्ना बन । होशियारी से काम ले । यह दुनिया ठगों की बस्ती है और तु बडी असानी से काम ले । यह दुनिया ठगों की बस्ती है और तू बडी आसानी से ठगों के जाल में फस जाता है। जिनको तू पालता है वे भी तेरे विरूद्ध है और तुझे खबर तक नहीं । कोई पीर बनकर लूटता है कोई पुरोहित बनकर लुटता है ।"[8] ऐसी स्थिति में देश का किसान किस तरह अपना और अपने परिवार का जीवन निर्वाह करे । किसानों की यह दुर्दशा कोई नई बात नहीं है । फिर भी भारतीय किसान आज भी अत्यंत धैर्यवान बना है । हर बार धोखा खाने के बाद भी वह जीवन में आशा की किरण को जगाए हुए निस्वार्थ भावना से निरंतर अपने कर्म में लग जाता है । उपन्यासकार ने विदर्भ के किसानों के माध्यम से देश के किसानों की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा हैं– "यह तीसरी बुआई है। चुभ रही है बदरकद्दू , चुनचुना रही है पूरी देह । हाथ में लेकर बीजों को धमका रही है छोटी–दो दो बार धोखा हो चुका है । इस बार बहना नहीं, बिलाना नहीं. सड़ना नहीं, सूखना नहीं, दगा मत देना । बरोबर जमसिल समझाता? बहुत मारूंगी हा, इस मीठी धमकी के बाद उसने बीजों को फिर से चूमा और रोप दिया काली माटी में ।"[9] इस प्रकार हम देखते हैं कि खेती में लागत ज्यादा और मुनाफा कम होने के कारण किसान को कर्ज का सहारा लेना पड़ता है । किसानों की इस दयनीय स्थिति का मुख्य कारण, उन्हें मानसून की जानकारी का अभाव होना है ।

देश में प्रतिदिन बढ़ती महँगाई से महँगे होते कृषि साहित्य की खरीदी हेतु किसानों को ऋण की आवश्यकता पड़ती है । तब वह राष्ट्रीय बैंकों की ओर मुडते हुए दिखाई देते हैं लेकिन बैकों की कागदी कार्यप्रणाली से परिचित न होने के कारण व भ्रष्टतंत्र प्रणाली के चलते उन्हें गाँव के साहुकारों से अधिक ब्याज की दर पर कर्ज लेना आसान लगता है । देश के किसानों की इस यथार्थ स्थिति को उपन्यासकार ने बडे ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा हैं– "महंगे बीजों, खादों और कीटक नाशकों की वजह से ज्यादातर किसानों को कर्ज लेना पड़ता है । सरकारी बैंकों में खसरा–खतौनी नकल दुरूस्ति समेत कई लफड़े कर्ज की राशि भी कम । फलत: ज्यादातार किसान वहां जाने से ही घबराते है और उन्हें ऋण एजंसियों और गाँव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है । जो होता तो 10 प्रतिशत प्रतिमाह या उससे भी ज्यादा पर वे यह नहीं पूछते थे कि किसलिए ले रहे हो, उनसे रिश्ता अंत तक आत्मीय बना रहता है । एक किसान को सिर्फ खेती, बीज, कीटक नाशक, सिंचाई नहीं जीवन और परिवार की

अन्य जरूरते भी होती हैं, जैसे बच्चे शिक्षा, स्वास्थ्य, बेटी की शादी, खुशी, गमी जैसे चीजों के कर्ज सरकार से नहीं मिलते। ऐसे हालात तक ले ही आए है क्योंकि हुक्मरान हमें यहाँ? सारे राजनेता, सारे पार्टियों के राजनेता लगता है दलाल है उन्हीं के।"[10] देश के किसानों की यह दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। देश की अधिकाधिक अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है और लगभग 70 प्रतिशत आबादी आज भी कृषि पर आश्रित है। बावजूद इसके भूमंडलीकरण, उदारीकरण और नीजिकरण नीति के तहत देश की कृषि और किसान को हाशिए पर डाला गया। किसानों की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन निम्न से निम्नतर होती जा रही है। इसकी अभिव्यक्ति उपन्यास में यों होती हैं– "इस देश के सौ में से चालीस शेतकरी आज खेती छोड़ दे अगर उनके पास कोई दूसरा चारा हो। 80 लाख ने तो किसानी छोड़ भी दी।"[11] कभी भारत की आत्मा के नाम से ख्याति प्राप्त किसान आज अपनी कष्ट भरी जिंदगी से टूटकर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। यह आत्महत्या एक किसान की आत्महत्या नहीं है बल्कि यह किसानी संस्कृति की हत्या अर्थात भारत की हत्या है, ऐसा कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगी। जब भौतिकता के चकाचौंद में देश का आम आदमी अपनी इंसानियत भूलकर केवल और केवल स्वार्थ सिद्धी हेतु अन्य लोगों के साथ अमानवीय कृत्य करने को लालायित है। ऐसे आधुनिक स्वार्थी मानव के अमानवीय कृत्य को देखकर लेखक किसान की दयनीय स्थिति पर प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं– "खेत क्यों बंजर हो जाता है और क्यों बंजर हो जाता है आदमी का मन? इस मरण के खिलाप उठकर खड़े होने की कोशिश में बार–बार लडखड़ा कर क्यों गिरता आदमी?"[12]

शहरी विकास के नाम पर ग्रामीण विकास कहीं थम सा गया है। आधुनिकीरण के आर्थिक नीतियों में हाशिए पर खड़े छोटे किसान निरंतर अपने अस्तित्व को खोते जा रहे हैं। कर्ज के बोझ तले दबा किसान दम तोड़ रहा है। यह सब छोडकर वह भी शहरों की रोशनी देखकर उसकी ओर आकर्षित होता है लेकिन परिवार की जिम्मेदारियाँ उसे मुक्त नहीं होने देती। उपन्यास का पात्र शिबु खेती की दशा देखकर मायूस है। सोचता है कि अकेला होता तो चला भी जाता कहीं... नागपुर, नासिक, मुंबई, दिल्ली। लेकिन ये दो–दो मुलगियाँ, बायको इन सब को लेकर कहाँ जाऊँ?"[13] भारतीय किसान अपने परिवार की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए जमींदारों, सूदखोरों के शोषण की चक्की में पिसता हुआ कब अपने जीवन की बलि दे देता है। इसका ज्वलंत उदाहरण लेखक संजीव ने 'फाँस' उपन्यास के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है। उपन्यास की भूमिका में श्री प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं– "कृषक आत्महत्या महज जिम्मेदारियों से पलायन नहीं, एक प्रतिवाद भी है– कायरता नहीं, भाव प्रवणता का एक उदात्त मुहूर्त भी– पश्चाताप प्रस्थान और निर्वेद की आग में मानवता का झुलसता हुआ परचम।"[14] कर्ज के जाल से छुटकार पाना आसान नहीं है। ऐसे में किसान को एक ही विकल्प दिखायी देता है– आत्महत्या। इन सभी में फंसा शिबु बैंक का पूरा कर्ज चुकाने के बाद भी शोषण तंत्र से हार कुएँ में कुदकर अपनी जान देने को मजबूर हो जाता है।

विकास की अंधी दौड़ में बिकाऊ मीडिया में किसान की आत्महत्या जैसी कोई खबर, खबर नहीं बनती। देश के अन्नदाता की यह दयनीय स्थिति को बयान न कर मीडिया टी. आर. पी. के चक्रव्युह में फस कर, आज अपने मूल उद्देश्य से भटकती नजर आ रही है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहते हैं– "किसान आत्महत्या कोई खबर नहीं बन पाती। मीडिया में हजार–हजार आत्महत्याएं कोई खबर नहीं बन पाती। खबर बनती मुबंई में चल रही फैशन वीक प्रतियोगिता। खबरिया चैनल जुटे है उसे कवर करने को मात्र 512।"[15] कृषिप्रधान देश में निजीकरण की नीति ने देश के छोटे–छोटे अन्नदाताओं को अंधेरे में धकेल दिया है, जहाँ केवल अंधेरा ही अंधेरा है। उपन्यास की भूमिका बांधते हुए, देश की गंभीर समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते श्री प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं– "फाँस खतरे की घंटी भी है और आत्महत्या के विरूद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और जमीनी संजीवनी का संकल्प भी।"[16] 'फाँस' उपन्यास के माध्यम से सजीव ने उन सभी पहलुओं को दिखाने की कोशिश की है जिन पहलुओं से केवल विदर्भ का किसान ही नहीं बल्कि देश के सभी किसानों को गुजरना पड़ रहा है।

इन परिस्थितियों से तंग आकर जब किसान आत्महत्या कर लेता तो यह आत्महत्या जब तक किसान की आत्महत्या सिद्ध नहीं होती जब तक आप भ्रष्टतंत्र के पोषक नेता, सरकारी कर्मचारी, बिचौलियों एवं दलालों आदि को कुछ आर्थिक लाभ नहीं होता। शिबु के मामले में यही बात होती उपन्यास में दिखाई देती है– "पोस्टमार्टम, पंचनामा... घूस की डिमांड... पैसे दे दो इन्हे पात्र बना दे वरना।"[17] एक अन्य उदाहरण द्वारा लेखक इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– "बाप के नाम पर जमीन, मरा बेटा! आत्महत्या अपात्र! कारण जमीन तो उसके नाम थी ही नहीं।"[18] अर्थात् किसान की जीवनलीला समाप्त होने पर भी उसके परिवार के शोषण का चक्र थमने का नाम नहीं लेता। तो कुछ राजनीतिक दल अपनी राजनीतिक रोटियों को सेकनें के लिए किसान की आत्महत्या को सत्ता की कुर्सी तक पहुँचने का हथकंडा बनाकर अपने स्वार्थ को प्राप्त करना चाहते हैं। उपन्यासकार संजीव ने यहाँ यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार देश के अन्नदाता की आत्महत्या को देश के स्वार्थी नेता अपने वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसकी अभिव्यक्ति उपन्यास में यों होती हैं– "किसानों के नाम अरबों रूपए लूटने है तो कृषक आत्महत्या, अपनी चीनी मिल लगाने का बहाना ढूंढना है तो कृषक आत्महत्या, विरोधी पार्टी दागना है तो कृषक आत्महत्या, बहुत कारगर है कृषक आत्महत्या की तोप।"[19]

निष्कर्षत: हम कह सकते कि देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'कहाँ तो तय था चिराग हरेक घर के लिए'। लेकिन वोट की ओछी राजनीति ने कृषि की स्थिरता और उत्पादकता में वृद्धि के मुद्दे को लेकर कभी एक सुसंगत कृषि नीति न अपनाने से कृषि माल की दलाली करने वाले मालामाल और अन्नदाता बेहाल है। यही परिस्थिति रही तो इक्कीसवीं सदी की उपभोगतावादी संस्कृति में हर एक आदमी उपभोक्ता होगा, पर अन्नदाता या उपजाने वाला किसान शायद कोई न होगा। संजीव का फाँस किसानों की आत्महत्याओं के भयावह दृश्य को प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि शासन की शोषणात्मक व्यवस्था पर प्रश्नचिंह भी लगाता है। जिसको व्यक्त करते हुए लेखक लिखते हैं– "क्या शिष्टाचार है... मरना है तो मर जाओ, ये परमिशन की नौटंकी क्यों? सोचते हो, तुम्हारे दु:खों से दु:खी और द्रवित हो जाएगी सरकार। दान, दया की बरसात करेगी।... तुम क्या समझते हो, तुम्हारे आत्महत्या करने से शासन बदल जायेगा? सिस्टम बदल जाएगा? कुछ नहीं बदलेगा?"[20]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डी. एस बघेल, किरण बघेल – भारत में सामाजिक आंदोलन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल – पृ.क्र –175
2. डी.एस. बघेल – समाजशास्त्र, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल – पृ.क्र. 261
3. प्रेमपाल शर्मा, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2015 भूमिका
4. वंदना तिवारी– किसान जीवन की करूण गाथा–अपनी माटी त्रैमासिक ई–पत्रिका 24 मार्च, 2017
5. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 25 – 26
6. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 72
7. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 172
8. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 172
9. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 99
10. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ.क्र..– 110–111
11. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 17
12. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 73

13. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 183
14. प्रेमपाल शर्मा, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 भूमिका
15. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– पृ. 183
16. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 105
17. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 116
18. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 133
19. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 153
20. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 183

साहित्याकाश